संपादक को फिर से सूत्र सौंपने की जरूरत

लोग मीडिया को सामाजिक सरोकारों तथा मानवीय मूल्यों से जोड़ने के पक्षधर हैं और चाहते हैं कि उसकी भूमिका के केन्द्र में यह विषय हों। कई बार तो इसके लिए वे मीडिया को उस तरह के अधिकारों से सम्पन्न करने की मांग भी करते हैं ताकि मीडिया अपनी जांच और निष्कर्ष के लिए अन्य वैधानिक निकायों की तरह मान्य हो। हाल ही मानव अधिकार के एक कार्यक्रम में एक भागीदार ने यह सवाल भी उठाया और कहा कि अब तक ऐसा क्यों नहीं हो पाया है? जब मीडिया लोगों के लिए कार्य करता है तो उसे उस तरह की सुरक्षा और उसके कार्य को तद्नुकूल मान्यता होनी चाहिये। वहां उन्हें बताया गया कि ऐसा क्यों नहीं है और क्यों नहीं हो सकता है। ऐसे ही महिला आयोग के एक विमर्श में भी मीडिया की भूमिका को लेकर यह कहा गया कि उसे महिलाओं पर होने वाले उत्पीड़न और अत्याचारों के विरोध में खड़ा होकर उन सभी लोगों को बेनकाब करना चाहिये जो यौन शोषण ओर यौन अपराधों के दोषी हैं। इसके लिए यदि कानून बाधा बनता हो तो उसे उस तरह से कानून सम्पन्न बनाया जाये। यह कहते हुए कई बार लोग मीडिया ट्रायल के पक्ष में भी खड़े दिखाई दे जाते हैं। दामिनी के मामले में मीडिया की इस भूमिका की सराहना भी की गई।

इस तरह से समाज का लगभग हर वर्ग, संगठन और विभाग मीडिया से अपने कार्यों के पक्ष में उसकी भूमिका को सामाजिक सरोकारों के संदर्भ में चाहता है। न्याय, प्रशासन और पुलिस भी ऐसा ही चाहते हैं। लोग इन विभागों की जड़ता और संवेदनहीनता को उजागर करने के लिए मीडिया से अपेक्षा करते हैं और विभाग अपने कार्यों को लोगों तक पहुंचाने के लिए इन्हीं आधारों पर मीडिया से अपेक्षा करते हैं। साहित्य, संगीत सहित सभी कलाओं से जुड़े लोगों की भी मीडिया से लगभग इसी तरह की अपेक्षाएँ है । पर वे यह नहीं जानते कि मीडिया अपने इस घोषित और आकांक्षित लक्ष्य के लिए काम क्यों नहीं कर पाता है। वह ऐसा करता तो दिखाई देता है पर ऐसा ही नहीं करता है।

मीडिया के संबंध में यह सब आकांक्षाएँ मोटे तौर पर छवि बनाने या ध्वस्त करने, प्रशंसा और प्रचार, उजागरी या सच को सामने लाना और समाधान यानी इस सब का उपचार क्या है, इसे बताना है। मीडिया के कामों का विवेचन करें तो पहली दो बातें बहुत साफ दिखाई देती हैं। नेता, सरकार, सत्ता, व्यवसाय, और उससे जुड़े विचार तथा संस्थानों की प्रशंसा या आलोचना मीडिया में प्रतिदिन है। उपलब्धियाँ हासिल करने वाले लोगों की भी प्रशंसा उसमें मिल जाती है। उसके माध्यम से की जा रही

प्रशंसा से व्यक्ति तथा संस्थान एवं संस्थाओं की छवि बनती और बढ़ती है तथा उसके माध्यम से हो रही आलोचनाओं से वे छवियाँ कम या ध्वस्त भी होती हैं। इन सबके उदाहरण हमारी स्मृति में हैं। ताजे उदाहरण भी हैं और पहले के भी बहुत से उदाहरण हैं। कई लोगों की तो मीडिया के माध्यम से ही दो तरह की छवियां बनी और उसपर जब-तब बहस हो जाती है। फिर वे चाहे गांधी या नेहरू हों या ओशो या आसाराम हों। यह सब तो प्रतीक नाम हैं। बात समझ में आये इसलिए। ऐसे नामों की फेहरिस्त हम सबके पास है और याद करेंगे तो उनकी जो छवि हमारे पास है उनमें अधिक भाग मीडिया का है।

यह सब करते हुए उसपर आक्षेप भी आते हैं कि वह छवि बनाने या बिगाड़ने का काम ठीक नहीं कर रहा है। यह भी आक्षेप होता है कि अब वह छवि बनाने और बिगाड़ने का व्यवसाय कर रहा है। वह इस सबके लिए मुआवजा लेता है। वह इन छवियों के सहारे सत्ता में जाने और सत्ता से उतारने के काम का सहयोगी बनता है, पैसा लेकर। यह माना जाता है कि पहले मीडिया ऐसा व्यवसायी नहीं था। पहले वह एक हद तक निष्ठा और ध्येय के लिए अधिक काम करता था, व्यवसाय के लिए कम या बिल्कुल नहीं। उसे ऐसा करना चाहिये या नहीं इसपर अब भी बहस जारी है पर यह तो सब मानते हैं कि उसका हस्तक्षेप मानवीय मूल्यों और सकारात्मकता पर आधारित होना चाहिये।

इस सबसे अलग एक काम है जिसे हमने समाधान के रूप में यहाँ गिना है, वह मीडिया ने सबसे कम किया है और अब तो एक तरह से लगातार कम होता जा रहा है या हो गया है। यहाँ समाधान का आशय है कि वह उपचार जिससे समस्याएं समाप्त हो जायें। वह विवेचन, उपाय या मार्ग जिससे समाज और लोग सुखी, सम्पन्न, स्वस्थ और मूल्याधारित बन जाएं। एक मायने में तो उसके समाचार और विचार या विमर्श का समवेत अर्थ यही है। उसका कंटेंट या विषय वस्तु का चयन और प्रस्तुतिकरण का ध्येय ही वह है। पर समाचार के रूप में विसंगतियां आ गई हैं जिनका उल्लेख पहले किया गया है। पर विचार और विमर्श में वह पहले की तुलना में लगभग पूरी तरह से बदल गया है। उसके विमर्श में भी अब पहली दो बातें अधिक हैं। समाधान या उपाय के रूप में भी अब वह प्रचार और प्रशंसा की तरफ ही मुड गया है। अब इस सबके मामले में भी व्यक्ति, संस्थान, संस्था, विचार या बाजार अथवा स्वयं के हित के साथ होता है।

यह माना जाता है और सच भी है कि मीडिया अपने आप में कोई ऐसा उपाय नहीं है जिससे परिवर्तन हो। वह दरअसल परिवर्तन करने वाली इकाइयों यानी लोग, संस्थान, संस्थायें, बाजार-व्यवसाय, संस्कृति आदि से संबोधित होता है और उनसे संवाद करता हुआ उनको प्रेरित और प्रभावित करके उनसे ऐसा करने का आग्रह अथवा विचार करने के लिए कहता है। परिवर्तन की कारक शक्तियाँ तो संविधान में वर्णित निकाय-विधायिका, कार्यपालिका और न्याय पालिका तथा उसकी अधीनस्थ संस्थायें तथा विधान, नियम आदि हैं। ऐसे ही संस्कृति, लोग और उनसे सम्बध्द संस्थान या

संस्थायें अपने कार्यकारी हस्तक्षेप से परिवर्तन करते हैं। पर साहित्य और विमर्श इन लोगों का मत और मन बनाने का कार्य करता है जिससे वे निर्णय लेते हैं। मीडिया इस दूसरे वर्ग का है जो स्वयं कोई कार्य नहीं करता पर वह अपने कथ्य से लोगों का मत, मन बनाता और प्रेरणा देता है। महात्मा गांधी का इंडियन ओपीनियन, यंग इंडिया, तथा हरिजन, तिलक का मराठा तथा केसरी, सदानंद का फ्री प्रेस, पराडकर का आज, माखनलाल चतुर्वेदी का कर्मवीर आदि इसी तरह से प्रेरित करने का ही तो काम करते रहे हैं। उत्तर स्वतंत्रता काल में पत्रकारों और अखबार तथा पत्रिकाओं ने यह काम जारी रखा था। सरस्वती, मेनस्ट्रीम, दिनमान, धर्मयुग, जनसत्ता, नई दुनिया आदि ने यही किया।

यह सब सम्पादक और उसके मार्गदर्शन में काम करने वाली टीम करती थी। सम्पादक की सोच और उसका लेखन ही उस पत्र या पत्रिका की पहचान होती थी। इस सबंध में यह एक अचरजभरा तथ्य है कि जिस सम्पादक और उसके विचार जिसे सम्पादकीय कहकर पहचाना जाता रहा है, वह आजादी के बाद के वर्षों में लगातार गायब होता गया है। सन् अस्सी के बाद से तो उसकी जगह एक दूसरे विचार और प्रेरणाओं ने ले ली है। उपभोक्तावाद का विकास और विस्तार बाजार और उपभोगवादी संस्कृति की देन है। पर उसे लोगों तक पहुँचाने और उनका मत और मन बनाने का काम तो मीडिया ही करता रहा है। इससे मीडिया की पहचान विमर्श के बजाय मनोरंजन की होती चली गई है। उपभोग और मनोरंजन ने ही यौन प्रेरित विकृतियों का विकास किया है, ऐसा मान लेने के कारण हैं। इस मायने में उसका तीसरा ध्येय भी पूरी तरह से पराजित हो चुका है। इस तीसरे और महत्वपूर्ण उपाय या साधन को मीडिया में पुन: स्थान कैसे मिले और वह समाचार और विचार का सूत्रधार कैसे बने, यह आज की सबसे बड़ी जरूरत है। राजदीप सरदेसाई ने अभी हाल ही में एक कार्यक्रम में इसी बात को फिर से उठाया है। उन्होंने कहा कि सम्पादक के कमजोर और समझौता परस्त होने से पूरी पत्रकारिता ही प्रभावित हुई है। उन्होंने नई पीढ़ी के पत्रकारों को संवेदना और मूल्य हीन होने के लिए सम्पादक को ही दोषी ठहराया है और कहा है कि समाज सरोकारी पत्रकारिता के लिए सम्पादक को फिर से समाप्त हो चुकी भूमिका में लाना होगा।

० ० ०